प्रथम अध्याय

'मीरां का व्यक्तित्व एवं कृतित्व'

प्रथम - अध्याय

मीराँ का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

हिन्दी भक्ति साहित्य में मीराँबाई एक प्रधान कवयित्री है । स्त्री भक्तों में भारत में तो क्या संसार में मीराँ अद्वितीय है । भक्तियुग के श्रीकृष्ण भक्तों में मीराँ का स्थान श्रध्दापूर्ण है । मीराँ की कृष्णभक्ति अलौकिक है । उसने राजस्थान की पुण्यभूमि को अपने चरणस्पर्श से पुलकित कर दिया है ।

मीराँ के भजन गुजरात से लेकर बिहार तथा मध्यप्रदेश से पंजाब तक सभी जगह बड़े भक्ति-भाव और श्रध्दा के साथ लोग गाते हैं । इसलिए हिन्दी,गुजराती के श्रेष्ट भक्त कवियों में मीराँ का महत्व बढ गया है । चाहे आज का युग अशान्त और बिखरा हुआ क्यों न हो लेकिन इस युग में भी मीराँ का काव्य मानवीय श्रध्दा की नींव बना हुआ है ।

मीराँ का व्यक्तित्व, मीराँ का जीवनक्रम, भक्ति की प्रवृत्तियाँ और उसके कृष्ण काव्य के आधार पर बड़ी तटस्थता से कहा जाएगा कि वह वैष्णवी थी, कृष्ण की उपासिका थी । मीराँ कृष्ण की आराधना में मग्न थी । समय, परिस्थिति, जन्मगत संस्कारों के प्रभाव में आकर उसकी भक्तिभावना और काव्यप्रतिभा आलोकित हो गयी । कहते हैं अच्छे संस्कार ही मनुष्य को महान बनाने में प्रेरक होते हैं । मीराँ के संबंध में यही स्पष्ट होता है कि उसके संस्कार पावन एवं शक्तिशाली थे । मीराँ वीर श्रेष्ठ रत्नसिंह की कन्या, तलवार के धनी भक्त जयमल की चचेरी बहन और राणा सांगा की पुत्र वधु थी । राजस्थान में हमेशा युध्द होते थे । वहाँ युध्दों के कारण गगन भेदी आवाज सुनायी देती थी ; किन्तु मीराँने अपने मधुर भावपूर्ण पदों से राजस्थान को गौरव प्राप्त कर दिया । कृष्ण प्रेम से युक्त अपने काव्य से राजस्थान की मरुभूमि को ही नहीं पूरे भारत को प्रभावित कर दिया ।

डॉ॰ नरेन्द्र भानावत ने भी कहा है कि, " मीराँ भक्ति के तपोवन की शकुंतला है । "[1] मीराँ का व्यक्तित्व दुःख, प्रेम, वीरता और माधुर्य का अद्भुत समन्वय है । मीराँ का राजपूती रक्त मर्यादा और लज्जा की सीमा लांघ कर विष-पान तथा सर्पदंशन के सम्मुख तटस्थ बना रहा । मीराँ का जीवन लौकिक जीवन था, मगर अपनी भक्ति-भाव की दिव्यता एवं साधना की अपूर्वता के कारण जन-साधारण में वह असाधारण बन गई । परिणामतः उसका जीवन चरित्र ऐतिहासिक व्यक्तित्व से उपर उठकर पौराणिक चरित्रों की श्रेणी तक पहुँच गया । राजस्थानी मीराँ आत्मपीड़ा की गायिका बनी है । उसका काव्य स्वान्तः सुखाय है । मीराँ के काव्य में सैध्दान्तिकता नहीं है । उसका काव्य जनसामान्य के लिए सहज ग्राहय है । मीराँ के काव्य में भक्ति और भगवत्प्रेम की सच्ची, स्वाभाविक एवं सहज अभिव्यक्ति है । मीराँ का काव्य पवित्र,अलौकिक और मार्मिक है । उसका काव्य भक्ति की धारा से परिपूर्ण है । मीराँ की इस भक्ति-धारा को सगुण और निर्गुण दोनों किनारे प्राप्त हैं । मीराँ ने निर्गुण की नीरसता को सगुण की सरसता में परिवार्तित किया । उसका कृष्ण सगुण, साकार होते हुए भी उसमें निर्गुण की झलक दिखाई देती है । मीराँ ने कभी दार्शनिक विचारों का खंडन मंडन नहीं किया । मीराँ का महत्व संप्रदाय मुक्त कृष्ण भक्तों में सर्वोपरी है । डॉ॰कृष्णदेव झारी जी की दृष्टि में " मीराँ को संप्रदाय मुक्त कृष्ण भक्त कवियों में मूर्धन्य स्थान प्राप्त है । "[2] मीराँ कृष्ण प्रेम में इतनी दीवानी हुअी थी कि कृष्ण और मीराँ दोनों अद्वैत रह गये । मीराँ ने किसी संप्रदाय का आश्रय ग्रहण न करते हुए अपनी भक्ति को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त किया ।

मीराँ भक्तिकाल की कवयित्री थी । वह राजघराने की विदूषी महिला थी । उसकी जन्मतिथि, जन्मस्थान, पति, देवर, मृत्यु आदि के संबंध में विदानों में पर्याप्त भ्रांति रही है ।

जीवनवृत्त :

जन्मतिथि -

इसकी जन्मतिथि के विषयमें विद्वानों में मतैक्य नहीं है । कई विद्वान मीराँ की जन्मतिथि सं॰ 1555 वैशाख सुदि तो कई सं॰ 1573 मानते हैं । डॉ॰कल्याणसिंह शेखावत मीराँ का जन्म वि॰सं॰ 1555 को वैशाख सुदि 3 को मानते हैं । कर्नल टाड के आधार पर उसका काल लगभग 1453-89 ई॰ है । ग्रियर्सन ने मीराँ को पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में कविकोकिल विद्यापति का ही समकालीन मान लिया है । नाभादासजी के " भक्तमाल " के आधार पर मेकालिफ लिखित वार्ता में वर्णित मीराँ की जन्मतिथि कुछ युक्तियुक्त लगती है । इसमें मीराँ की जन्मतिथि 1504 ई॰ है । मिश्रबंधुओं नें अपने " विनोद " में मीराँ का जन्म संवत 1573 वि॰ माना है । पं॰ रामचन्द्र शुक्ल ने भी मीराँ के जन्म का वर्ष यही माना है । डॉ॰ भुवनेश्वरनाथ मिश्र " माधव " जी लिखते हैं । " इनका जन्म सं॰ 1573 में हुआ । "[3] भाटों की हस्तलिखित बहियों से पता चलता है कि मीराँ का जन्म वि॰सं॰ 1581 श्रावण सुदि 1 शुक्रवार को हुआ था ।

डॉ॰ प्रभातजी, डॉ॰ कृष्णदेव झारी, डॉ॰ राजेन्द्रमोहन भटनागरजी ने मीराँ की जन्मतिथि श्रावण सुदी 1 शुक्रवार संवत 1561 निर्धारित की है । रामबहोरी शुक्ल इसका जन्म ई॰ सन 1498 मानते हैं । मीराँ से संबंधित तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं से मिलान करने पर मीराँ का जन्म संवत 1561 में मानना उपयुक्त प्रतीत होता है । आचार्य ललिताप्रसाद सुकुलजी " रास पूनो " को मीराँ की जन्मतिथि मानते हैं । वर्ष का उल्लेख उन्होंने नहीं किया । डॉ॰ शिवकुमार शर्मा और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी मीराँ की जन्मतिथि सं॰ 1555 मानते हैं । डॉ॰ भगवानदास तिवारी जी मीराँ का जन्म संवत 1560 निश्चित करते हैं ।

मीरांबाई की जन्मतिथि के संबंध में कोई मीरांकालीन प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है । कवयित्री की कृतियों में भी ऐसा कोई उल्लेख नहीं है, जिनके आधार पर उसकी जन्मतिथि के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जाता । फिर भी अधिकांश विद्वन मीरां की जन्मतिथि संवत 1561 मानते हैं ।

<u>जन्मभूमि</u> -

जिस तरह मीरां की जन्मतिथि विवादास्पद है उसी तरह उसकी जन्मभूमि भी विवादास्पद है । क्योंकि कई विद्वन मीरां की जन्मभूमि "कुड़की" तो कई "चौकडी", कइयों ने "मेडता" मानी है, तो कई "बाजोली" कहते हैं । डॉ॰कल्याणसिंह शेखावत ने मीरां का जन्मस्थान जोधपुर राज्य का "बाजोली" ग्राम कहा है । "बाजोली" गाँव मीरांबाई के पिता रतनसी दूदावत को "कुडकी" सहित 12 गाँवों के साथ जागीर में मिला था । "बाजोली" एक धान की मण्डी के रूप में प्रसिध्द था । डॉ॰कृष्णदेव झारी जी ने "मीरां" का जन्मस्थान "मेडता" लिखा है । नाभादास के छप्पय पर प्रियादास ने जो टीका लिखी है उससे भी पता चलता है कि मीरां की जन्मभूमि मेड़ता थी । "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के" अनुसार मीरां मेडता में रहती थी ।

डॉ॰भुवनेश्वरनाथ मिश्र "माधव" डॉ॰प्रभात, डॉ॰कृष्णदेव शर्माजी ने मीरां का जन्म " कुड़की" नामक ग्राम में माना है । डॉ॰ रामप्रकाश और राजेन्द्रमोहन भटनागर के मत में मीरां का जन्म " कुडकी" ग्राम में हुआ । कुडकी मेडता से 29 कि॰ मी दूर है । वहाँ मंदिर के पीछे जो किला है वहीं मीरां का जन्मस्थान है । डॉ॰ गणपतिचन्द्र गुप्त, डॉ॰हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ॰रामनिवास गुप्त और डॉ॰देशराजसिंह भाटी, डॉ॰ भगवानदास तिवारी, रामबहोरी शुक्ल, डॉ॰ भगीरथ मिश्र, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी "मीरां" की जन्मभूमि "कुडकी" कहते हैं । डॉ॰ लाजवन्ती भटनागर के अनुसार "मीरां का जन्म कुड़की नामक गाँव में हुआ था । फिर रावदूदाजी से मीरां के पिता रत्नसिंह को जागीर के रूप में जो बारह गाँव दिये थे, कुड़की उन सब का केन्द्र था और वहीं पहाड़ी पर एक छोटासा किला भी है; जिसमें रत्नसिंह जी सपरिवार रहते

होंगे । अतएव वहीं उसी किले में मीराँ का जन्म होना सुनिश्चित होता है ।"[4] इस तरह अधिकांश विद्वानों के विचारों से स्पष्ट होता है कि मीराँ की जन्मभूमि "कुड़की" थी ।

नामरहस्य - मीराँ या मीरां :

कवयित्री का मूल नाम "मीराँ " जन्मतः ही है । यह नाम मातापिता द्वारा दिया गया था । मीराँ को यह नाम उसके जन्म से मिला है, जो भारतीय परम्परा से संबंधित लगता है । मीराँ का मीराँबाई नाम बाद में श्रध्दालु भक्तों और लोगों के समुदाय द्वारा दिया नाम है । राजस्थान में जिस कन्या ने जन्म लिया, वह बाद में कृष्ण-भक्त कवयित्री बन गयी फिर अनायास मीराँबाई नाम से उसकी कीर्ति फैल गयी । मीराँ अथवा मीराँबाई में कोई अन्तर नहीं है । उसके पुकारे जाने का नाम 'मीराँ' ही था उसके पदों में मीराँबाई भी आया है, जो मीराँ का ही पूरा नाम है । इस संबंध में प्रो॰ देशराजसिंह भाटी जी लिखते हैं कि " इस प्रश्न पर भी अनेक विद्वानों ने विचार किया है कि यह शब्द "मीराँ" है अथवा "मीरां" ? अधिकांश विद्वान इसे "मीराँ" ही स्वीकार करते हैं; क्योंकि वे इस शब्द का जन्म फारसी शब्द "मीर" से मानते हैं और आदरार्थ उसका बहुवचन "मीराँ" मानते हैं । हिन्दी में दोनों रूप प्रचलित हैं; किन्तु अधिक प्रचलन "मीराँ" का ही है । अतः प्रचलन की दृष्टि से "मीराँ" ही होना चाहिए, वैसे "मीराँ" भी अशुध्द नहीं है । "[5] मीराँ ने स्वयं एक स्थान पर कहा है——

"मेडतिया घर जन्म लियो मीराँ नाम कहायो । "

इससे स्पष्ट होता है कि मातापिता के द्वारा प्रदत्त यह नाम है । उसमें असाधारणता का कोई प्रश्न नहीं । "बाई" शब्द उसके नाम के साथ आदर सूचित करने के लिए बाद में जोड़ा गया है ।

वंश :

मीराँ का जन्म राजस्थान के राठौड़ वंश में हुआ था । यह सर्वसम्मत

है; क्योंकि इस वंश के प्रवर्तक राव दूदाजी थे और राव दूदा जोधपुर नगर के संस्थापक राव जोधाजी के पुत्र थे । मीराँ राव दूदाजी की पौत्री थी । राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र का नाम रत्नसिंह था । वह इनकी इकलौती सन्तान थी । डॉ॰भगवानदास तिवारी जी के अनुसार-"मीराँ का जन्म राठोड़ कुल में हुआ था । वे जोधपुर के संस्थापक राव जोधाजी की प्रपौत्री, राव दूदाजी की पौत्री और राव रत्नसिंह की पुत्री थी ।"[6] अतः मीराँ का जन्म राठोड़ वंश में हुआ था ।

मीराँ के पिता -

मीराँ के पिता के नामसंबंधी विद्वानों में अधिक मतभेद दिखाई नहीं देता । कई विद्वान मीराँ के पिता का नाम "रतनसी" मानते हैं तो कई विद्वान "रत्नसिंह" मानते हैं । मीराँ के पिता रत्नसिंहजी राव दूदाजी के चौथे पुत्र थे । डॉ॰सुमन शर्मा, श्री॰ ओमप्रकाश अग्रवाल, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डॉ॰कृष्णदेव झारी, डॉ॰शिवकुमार शर्मा, डॉ॰रामप्रकाश, डॉ॰राजेन्द्रमोहन भटनागर, डॉ॰हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ॰रामनिवास गुप्त एवं प्रो॰ देशराजसिंह भाटी ने मीराँ के पिता का नाम "रत्नसिंह" सिध्द किया है ।

अतः निश्चित रूप से यह कहना होगा कि राव दूदाजी ने संवत् 1519 वि में जिस मेड़ता नगर की स्थापना की थी, उसके चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह माने गये और इनकी इकलौती संतान मीराँ थी । आगे चलकर "राव दूदाजी" के वंशज मेड़तिया राठोड़ के नाम से विख्यात हुए ।

मीराँ की माता :

मीराँ की माता के नामसंबंधी अधिकांश विद्वानों ने मौन धारण कर लिया है मीराँबाई की माता के जीवन का ऐतिहासिक विवरण अंधःकार में है । विद्यानंद शर्मा, डॉ॰शेखावत, डॉ॰राजेन्द्रमोहन भटनागर मीराँ की माता का नाम "कुसुम कुंवर" बताते हैं। हरिनारायण पुरोहित "वीर कुँवरि" यह मीराँ की माता का नाम सिध्द कर देते हैं । अतः मीराँ की माता का नाम "कुसुम कुंवर" ही होगा ।

मीराँ का पितृ परिवार -

मीराँ का पितृपरिवार धार्मिक वृत्ति एवं सुसंस्कारित था । यही कारण है कि मीराँ एक भक्त कवयित्री बन गयी । मीराँ के दादा राव दूदा जोधावत राठौड़ों की मेड़तिया शाखा के संस्थापक एवं जोधपुर के शासक थे । मीराँ के पितृ परिवार में धार्मिक भावना विशेष प्रबल थी । मीराँ का भाई "जयमल" प्रसिध्द वैष्णव भक्त था । पितामह दूदाजी धर्मात्मा व्यक्ति थे । उनकी धर्मभावना उदार एवं असांप्रदायिक थी । मीराँ का पितृकुल एकलिंग का उपासक था । उनका सीधा संबंध शिव से था । मीराँ का पितृपरिवार कुलीन, सुसंस्कारित, धार्मिक, राजकुल से संबंधित था ।

शैशव / परवरिश -

मीराँ की माता का स्वर्गवास मीराँ के बचपन में हुआ था । इसके दादा राव दूदाजी ने मीराँ की परवरिश की । दादाजी के संस्कारों में मीराँ का बचपन बड़े लाड़ और प्यार से बीता । मीराँ दो ही वर्ष की थी, तब मीराँ की माता परलोक सिधर गई थी । मीराँ के पिता एक वीर राजपूत सैनिक थे । हमेशा वे किसी न किसी युध्द में व्यस्त रहते थे । इसलिए उनकी इकलौती संतान उनके स्नेह-दुलार से वंचित रह गयी थी । राव दूदा ने उसे मेड़ते में अपने पास बुला लिया और वहीं उसका शैशव पला । राव दूदा केवल तलवार के धनी नहीं थे,साथ ही चतुर्भुज भगवान के भक्त, एक परम वैष्णव भी थे । उन्हीं की छत्र-छाया में मीराँ को कृष्ण की प्रेम माधुरी का बोध हुआ । शैशवावस्था से ही मीराँ कृष्ण भक्ति में मग्न रहती थी । वह कृष्ण की पूजा के लिए फूलों को चुनकर माला बनाती और कृष्ण को पहनाती । भगवान का श्रृंगार करते तुतली बोली में गुनगुनाती रहती थी । हमेशा कृष्ण में ही तल्लीन रहती, उसके सिवा न कुछ कहती, न कुछ सुनती । दादाजी के साथ वह कृष्ण पूजा में अपना अस्तित्व खो बैठती ।

मीराँ के बचपन की दो महत्वपूर्ण घटनाओं में पहली घटना यह है - एक

दिन मीराँ के घर एक साधु आये थे । उनकी पूजा में श्री गिरधरलाल जी की मूर्ति ऐसी लगी, मानो वह उसके जन्म - जन्म के साथी हो । उस मूर्ति को पाने के लिए मीराँ का हृदय मचल उठा , मगर साधु से वह मूर्ति पा न सकी । साधु ने स्वप्न में देखा कि उसके गिरधरलाल जी उस अल्हड़ बालिका के पास पहुँचा आने का आदेश दे रहे हैं । भोर होते ही साधु मीराँ के यहाँ चल गये और मूर्ति दे आये । मूर्ति को पाकर मीराँ प्रसन्न हो गयी । वह आनंदोल्लास में कृष्ण की आराधना करने लगी ।

दूसरी घटना यह कि मीराँ के गाँव एक बारात आयी थी । बारात देखकर मीराँ के मन में भावी पति के प्रति कुतुहल जाग उठा । मीराँ ने बड़ी सरलता से माँ से प्रश्न किया - " माँ, मेरा विवाह किससे होगा ? " बेटी के इस प्रश्न पर माँ ने हँसकर कहा - " गिरधरलालजी से " और सामने मूर्ति की ओर संकेत किया । तब से मीराँ के मन में यह बात बैठ गई कि उसके सच्चे पति गिरधरलाल ही है ।

डॉ• नरेन्द्र भानावतजी के अनुसार " मीराँ को बचपन में ही माँ का वियोग सहना पड़ा और तत्पश्चात् पितामह, पति, पिता, ससुर और चाचा की मृत्यु का, बाबर एवं बहादुरशाह जैसे प्रबल शत्रुओं के आक्रमणों का, पारस्परिक गृह - कलह का विषाक्त वातावरण मीराँ के हृदय में विषाद और विरक्ति के भाव - भरने के लिए पर्याप्त था । दूसरी ओर जिस गिरधर गोपाल की मूर्ति का बाल्यकाल में ही उसके हृदय में जो अनुराग जगा वह अन्त तक बना रहा ।"[7] अतः मीराँ का बचपन सुख में नहीं बीता । बचपन में ही मीराँ ऐसे वातावरण में पली थी, जिसके कारण उसका मन धर्म और भक्ति के प्रति आकर्षित हो गया था । अपने पितामह की धार्मिक वृत्ति का प्रभाव उसके कोमल हृदय पर पड़ा । छोटी अवस्था में ही भगवद् भक्ति का बीज अंकुरित होकर भविष्य में पल्लविल हुआ ।

प्राथमिक शिक्षा -

मीराँ हमेशा अपनी प्रारंभिक शिक्षा एवं आत्मशक्ति - प्रकृति के सहारे अपने

जीवन में आयी कटुता का सामना करती रही और अपने मन को उत्साहित रखने की कोशिश करती रही । उसका मन दृढ़ होता गया । उसके मन में जीवन के प्रति स्वतंत्र दृष्टिकोण और उदारता की भावना निर्माण हुई । मीराँ के पितामह का धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण था । वे वैष्णव थे और संतों के प्रति वे श्रध्दा और सम्मान का भाव रखते थें । परिणामतः ऐसी प्राथमिक शिक्षा से मीराँ में भी यह प्रवृत्ति जाग उठी। मीराँ बचपन से ही भक्ति की ओर विशेष प्रवृत्त थी । मीराँ ने अपने दूदाजी के साथ रहकर अपनी बाल्यावस्था में ही अच्छी शिक्षा पायी । बाद में समय के अनुसार वह संगीत, नृत्य, काव्य आदि कलाओं में प्रवीण हो गयी । उसने धर्म - ग्रन्थों का अध्ययन भी किया ।

इस तरह मीराँ ने अपने दादाजी से प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण की, साथ ही गायन,वादन, नर्तन और काव्य प्रणयन आदि में प्रवीणता पायी ।

विवाह -

मीराँ का विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के पुत्र कुँवर भोजराज के साथ हुआ था । वे उदयपुर के महाराणा थे । यह विवाह राव वीरमदेवजी के प्रयत्नों के फलस्वरूप हुआ था । जब मीराँ का विवाह हुआ तब उसकी आयु 12 वर्ष की थी । अतः यह विवाह उसकी अत्यल्पायु में हुआ था । मीराँ का विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ था । ऐसा प्रसिध्द है कि महाराणा का प्रसिध्द हाथी विक्रम मेड़ता के दरवाजे में से न आ सका । परिणामतः उस दरवाजे को तुड़वाना पड़ा था । मीराँ के विवाह में बहुत बड़ा तोरण तैयार किया था, वह इतना बडा था कि उस पर 300 दिये रखे गये थे । विवाह के वक्त सभी देवर उपस्थित थे । डॉ॰ सुमन शर्मा प्रो॰ देशराजसिंह भाटी एवं डॉ॰ भगवानदास तिवारी जी मीराँ का पति राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज ही मानते हैं । प्रसिध्द सन्त कवि हरिदास ने लिखा है -

" मेड़तणी निज भगति कुमावै भोजराज जी का जोड़ा की । "

इस तरह मीराँ और भोजराज समकालीन थे अतः मीराँ का भोजराज से विवाह होना संभव

लगता है । कुँवर भोजराज बहुत शूर और शान्त स्वभाव के थे । कुछ समय तक मीराँ का वैवाहिक जीवन सुखी रहा, किन्तु यह सुख के दिन अधिक दिन तक नहीं रहे। विवाह के सात वर्ष बाद भोजराज जी इस संसार से चल बसे । इस तरह मीराँ के पति राजकुमार भोजराज सुनिश्चित थे ।

विवाहतिथि -

मीराँ के विवाह तिथि के विषय में राजस्थान में कोई मतभेद नहीं है । चारणों और भाटों में सभी जगह विवाह की तिथि एक ही है । मीराँ की विवाहतिथि के संबंध में विद्वानों में भी मतैक्य है । मीराँ का विवाह वि॰सं॰ 1573 में हुआ था । डॉ॰ प्रभात, डॉ॰ भगवानदास तिवारी, डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ॰ रामनिवास गुप्ता, डॉ॰ लाजवन्ती भटनागर, राजनाथ शर्मा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भी उसका विवाह सन 1516 (वि॰स॰ 1573) इसवी में मानते हैं । प्रो॰ देशराजसिंह भाटी भी लिखते हैं कि "इसका विवाह संवत 1573 वि॰में मेवाड के प्रसिध्द महाराणा सांगा के जेष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज के साथ हुआ था ।"[8]

मीराँ की विवाहतिथि के संबंध में कई विद्वानों ने अपना मत प्रकट नहीं किया ; किन्तु जिन विद्वानों नें अपना मत व्यक्त किया है,उसके आधार पर यही कहना होगा कि मीराँ की विवाहतिथि संवत 1573 वि॰ अथवा सन 1516 उचित है ।

ससुराल -

मीराँ के ससुर मेवाड़ के महाराणा सांगा रायमलोत थे । मेड़ता के लिए उन्होंने अपना पूरा कर्तव्य निभाया था और मेड़ता ने भी महाराणा की पूरी सहायता की थी । राणा परिवार ने मेड़ता के प्रति तत्कालीन, राजनीतिक और सामरिक कर्तव्य से शक्तिसंपन्न मेड़ता के वीर शासक परिवार को सहजता से अपना बना लिया । मीराँ सुन्दर, सुशील, लावण्ययुक्त कन्या थी । इसलिए महाराणा ने बड़ी युक्ति से उसे अपनी पुत्रवधु बना दिया । मीराँ के ससुराल के संबंध में डॉ॰ प्रभात जी ने कहा है

कि " मीराँ चित्तौड़ के राणा के यहाँ ब्याही गई थी । माना जाता है कि यह परिवार रामचन्द्र जी के ज्येष्ठ पुत्र कुश का वंशज सूर्यवंशी क्षत्रिय है । "[9]

अतः मीराँ का पितृकुल जिस तरह एकलिंग का उपासक था, उसी तरह श्वसुरकुल भी एकलिंग का उपासक था । साथ ही वह कुलीन, राजपरिवार एवं धार्मिक प्रवृत्ति से युक्त था ।

मीराँ के देवर -

मीराँ के दो देवर थे । एक महाराणा विक्रमजीत और दूसरा महाराणा उदयसिंह । रत्नसिंह के बाद इन दोनों नें क्रमशः चित्तौड़ की गद्दी संभाली थी । महाराणा विक्रमजीत स्वभाव से अव्यावहारिक और अन्यायी था । राणा बनने के लिए वह बिल्कुल अयोग्य था । उसने अपने उद्दण्ड स्वभाव से राज्य में अव्यवस्था बना दी । अपनी कुल की रक्षा के लिए उसने मीराँ को अनेक कष्ट दिए । मीराँ को भक्ति-पथ से विमुख करने उसने दमन और अत्याचार तक का मार्ग अपनाया । डॉ॰ कृष्णदेव झारी जी ने राणा विक्रमजीत को बुध्दि-हीन, कुचक्री, घमंडी और झूठी शान जतानेवाला राणा कहा है । राणा विक्रमजीत ने मीराँ को जो कष्ट दिए, उसका परिचय हमें उसकी पदावली में मिलता है -

" राणा जी थे जहर दियो म्हे जाणी ।। टेक ।।
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत वारावाणी ।
लोकलाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जसपाणी ।
अपणे घर का परदा कर ले, मै अबला बौराणी ।
तरकस तीर लग्यो मेरे हिय रे, गरक गयो सनकाणी ।
सब संतन पर तन मन वारों चरण कँवल लपटाणी ।
मीराँ को प्रभु राखि लई है, दासी अपणी जाणी ।।" [10]

अतः मीराँ के देवर विक्रमजीत ने मीराँ पर इसलिए अत्याचार किए थे कि वह भक्ति मार्ग को त्याग दे । इसने क्रोध में आकर यहाँ तक निश्चय कर लिया था कि

मीराँ को किसी न किसी प्रकार जान से मार डालना चाहिए ।

मीराँ की ननद -

मीराँ की उन्दा नाम की एक ननद थी । उसने भी मीराँ को साधु-संतों की संगत और महलों से बाहर घूमने से वर्जित किया था । देवर विक्रमजीत के साथ उसकी ननद उन्दा ने भी मीराँ को सताने की बहुत कोशिश की थी ।

मीराँ के जेठ -

मीराँ के जेठ महाराणा सांगा रायमलोत के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज सांगावत थे। यह मेवाड़ के युवराज थे ऐसा जे•एन• फर्ल्कुहर जी ने कहा है । विभिन्न परंपराओं की सामग्री, संतों के कथन, साहित्यकारों के उल्लेख, चारणों या भाटों की बहियाँ और स्थानीय्य साक्ष्य सभी इस मत की पुष्टि करते हैं कि चित्तौड़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज की मीराँ पत्नी थी । अतः स्पष्ट है कि मीराँ के जेठ भोजराज ही थे ।

वैधव्य :

मीराँ का दाम्पत्य जीवन बड़ा ही सुखपूर्ण था । उसने पतिदेव की सेवा भी एक सती-साध्वी नारी की तरह की । पतिदेव के साथ वह बड़े आदर और विनम्रता के साथ पेश आती । प्रभु की उपासना में भी मग्न हो जाती । मीराँ का दाम्पत्य जीवन सुखपूर्ण बीत ही रहा था कि चढ़ती जवानी में ही उसके पति की मृत्यु हो गयी । तब से उसने पूर्णतया वैराग्य धारण कर सत्संग और गिरधर नागर में अपना मन लगा दिया । भोजराज जी अपने पिता के जीवनकाल में ही परलोक सिधारे थे । अपने पति की मृत्यु का मीराँ को बहुत गम हुआ । इस गम को वह सहन न कर सकी । पति की मृत्यु के बाद उसके पिता रत्नसिंह एवं श्वसुर चल बसे । इन अप्रत्याशित घटनाओं से मीराँ का कोमल हृदय दुःख से भर गया ।

सती न होना -

राजस्थान में मीराँ के समय पति के मर जाने पर पत्नी सती हो जाती थी, किन्तु इस परंपरा का पालन मीराँ ने नहीं किया । वह सती न हुई । उन दिनों हिन्दू नारी के लिए वैधव्य सबसे बडा अभिशाप था । नारी के लिए वैधव्य मृत्यु के समान था । शायद किसीके समझाने बुझाने के कारण उसने सती होने का विचार त्याग दिया होगा । डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ॰ रामनिवास गुप्त जी के अनुसार " मीराँबाई उस समय की परंपरा के अनुसार सती नहीं हुई । उनका मन तो लौकिक सुहाग की अपेक्षा अलौकिक प्रियतम के साथ सम्बन्ध जोड़ चुका था । इसके बाद मीराँ लौकिक बन्धनों से मुक्त होकर साधु-संगति एवं भक्ति में ही सारा समय बिताने लगी ।"[11] अतः निश्चित है कि वह सती न हुई ।

विष-पान -

" मीराँबाई की पदावली " में राणा द्वारा दी गयी प्राणान्तक यातनाओं में " विष-पान " की कथा प्रस्तुत है । मीराँ का मन पारिवारिक संकटों के कारण संसार से फिर गया । उसने राजसी जीवन त्याग दिया । राजवंश की प्रतिष्ठा का ध्यान उसे न रहा । मीराँ जब लोकलाज त्याग भजन, कीर्तन और साधु संगति में लीन रहने लगी, तब राणा के राजकुल की मर्यादा का उल्लंघन होने लगा । मीराँ को इससे विरत करने के लिए खुब समझाया गया, किन्तु सब निष्फल हुआ । राणा ने और उसके सलाहकारों नें मीराँ को भक्ति-पथ से विचलित करने और उसका जीवन समाप्त करने की कोशिश की । राणा ने मीराँ को मारने किसी दयाराम पंडा के द्वारा विष का प्याला भेज दिया । वह प्याला ठाकुरजी के चरणामृत के बहाने भेजा गया था । मीराँ उसे पी गई । कृष्ण से अनन्य भक्ति के कारण विष सचमुच अमृत बन गया था । स्वयं परमात्मा ने उसकी रक्षा की । मीराँ ने स्वयं अपने पद में देवर विक्रमजीत द्वारा विष का प्याला भेज देने का उल्लेख किया है । निम्नलिखित पद में मीराँ ने यह सिध्द किया है कि सच्ची भक्ति नाना प्रकार की बाधाओं और अत्याचारों के रहते हुए भी अक्षुण्ण

बनी रहती है । इसमें श्रीकृष्ण भक्त मीराँ की अनन्यता एवं एकाग्रता का बोध होता है --

" पग बाँध घूँघरयाँ णाच्यारी ।। टेक ।।
लोग कहयाँ मीराँ बावरी, सासु कहयाँ कुलनासी री ।
विष रो प्यालो । राणा भेज्याँ, पीवाँ मीराँ हाँसी री ।
तण-मण वार्याँ हरि चरिणाँ अमरित दरसण प्यास्याँ री ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, थारी सरणाँ आस्याँ री ।। "[12]

निष्कर्षतः यह अवश्य कहा जा सकता है कि मीराँ को मार डालने के लिए विष का प्याला भेजने की युक्ति सुझायी गयी । विक्रमजीत द्वारा भेजा विष का प्याला मीराँ ने चरणामृत समझ कर पी लिया । परिणामतः मीराँ पर उसका बिल्कुल असर न हुआ । मीराँ के प्रसंग में इस घटना का उल्लेख विभिन्न विद्वानों द्वारा हुआ है । इसलिए यह घटना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

नागप्रसंग -

नागप्रसंग का उल्लेख अनेक विद्वानों ने किया है । विक्रमजीत ने मीराँ को मारने के लिये एक डिब्बे में काला नाग बन्द करके किसी दासी के द्वारा मीराँ के पास भेज दिया था । दासी के साथ यह कहकर वह डिब्बा भिजवा दिया कि उसमें सालिगराम की मूर्ति है । मीराँ ने बड़ी भक्ति से उस डिब्बे को प्रणाम किया और वह खोला तो देखा उस डिब्बे में सचमुच एक दिव्य सालिगराम की मूर्ति निकली । उस मूर्ति को वह अपने प्रेमाश्रुओं से नहला देती है ।

दंड एवं अत्याचार -

मीराँ साधुसंगति में रहने लगी । लोकलाज त्याग पग में घूँघरु बांधकर नाचते हुए कृष्णभक्ति का गान करने लगी । इससे उसके देवर विक्रमजीत चिढ़ने लगे

मीराँ को उसने नाना प्रकार के कष्ट दिए । मीराँ को दण्ड देना ही उसने अपना कर्तव्य समझा । उसने चरणामृत कहकर विष का प्याला भेजा । फूलों की माला कहकर पिटारी में सर्प तक भेज दिया । परिणामस्वरूप मीराँ कृष्ण की अनुरागिनी हो गई । बचपन से " गिरधर गोपाल " को उसने अपना पति समझा था । मीराँ ने राजमर्यादा का उल्लंघन किया । इसलिए उसे राजकुल का कठोर विरोध सहना पड़ा था।

अतः यह सिध्द होता है कि राणा सांगा की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी उदा॰ विक्रमजीत आदि ने मीराँ के व्यवहार को राजसी अपमान समझा । उसे महलों में लौटाने की कोशिश की ; किन्तु मीराँ ने पहले ही महलों की चार-दीवारी की मर्यादा को लांघ दिया था । राणाने मीराँ पर अत्याचार किए एवं दण्ड भी दिया ; किन्तु मीराँ की भक्ति की पराकाष्ठा से उसका व्यक्तित्व अबाध रहा ।

संघर्ष और साधना -

मीराँ का संपूर्ण जीवन संघर्षमय रहा है । मीराँ का स्वतंत्र स्वभाव, खुले आम साधु-सन्तों से मिलना, कीर्तन भजन करना आदि बातें राणा की मर्यादा एवं शान के विरुध्द थीं । राजकुलीन लोगों ने यहाँ तक उसकी सास ने भी बहुत मनाने, समझाने की कोशिश की । मीराँ पर उसका बिल्कुल असर न हुआ । " पतिदेव " की मृत्यु से मीराँ की जीवनधारा में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ । वह गिरधर की साधना में लगी रहती । मीराँ की साधना से सन्तों की मंडली जमी रहती । यह देखकर राणा को मीराँ के चरित्र पर शक होने लगा । उन्होंने उसकी परीक्षा ली । हर परीक्षा में वह सफल रही । राणा को इस बात का भी पता चला कि मीराँ से प्रभावित होकर बादशाह अकबर एवं विश्वविख्यात गायक तानसेन वेश बदलकर आये थे । इससे राणा क्रोधित हुआ । उसने मीराँ को जान से मारने की कोशिश की । मीराँ अपने संकल्प पर अटल रही । रातदिन हरि-चर्चा, कीर्तन के सिवा उसे कुछ नहीं सुहाता । उसने संकल्प लिया था कि जब तक शरीर में प्राण रहेंगे, तब तक वह हरि-आराधना में लीन रहेगी। मीराँ की " ननद " ने भी उसे राह पर लाने की कोशिश की । उदा ने इसके लिए

षड़यंत्र रचा । अपने भाई विक्रमजीत से उसने कहा कि मीराँ आधी रात को द्वार बंद कर दीपक जलाकर किसी मर्द से प्रेमालाप करती है । राणा को इस बात का विश्वास न हुआ । तब उन्दा ने स्वयं जाकर देखने का आदेश दिया । राणा क्रोध में तलवार लेकर दौड़ा । जब उन्होंने देखा कि मीराँ श्री गिरधरलाल जी की मूर्ति के सामने हाथ जोड़े अर्ध्दमूर्च्छित दशा में है, तब वे किंकर्तव्य विमूढ़ रह गए । यह देखकर उन्दा मीरों के चरणों में गिरकर रोने लगी । अपने किए पर उसे पछतावा हुआ । डॉ॰ प्रभातजी मीराँ का जीवन विषादपूर्ण, संघर्ष और विषमताओं की कटु कहानी कहते हैं । उन्होंने इसके प्रमुख तीन कारण बताए हैं ।

1) मीराँ का रूप, यौवन तथा वैधव्य

2) मीराँ का स्वतंत्र स्वभाव

3) साधु सन्तों का संपर्क

विवाह के तुरंत ही पति के प्यार से वंचित मीराँ ने अपना जीवन गिरधर गोपाल को सौंप दिया । जगत् को मिथ्या मानकर अविनाशी कृष्ण के साथ अपना नाता प्रगाढ़ किया । साधूओं की संगति में रहनेवाली मीराँ को सास ने " कुलनासी " कहा । लोकनिन्दा की शिकार बन वे " बिगड़ी " कही गयी । सांसारिक स्तुति और निंदा से उपर उठी हुई मीराँ ने इन बातों की परवाह न की । उसके जीवन में संघर्ष ज्यों-ज्यों तीव्र होता गया, मीराँ की साधना त्यों-त्यों प्रखर होती गयी । डॉ॰ रामप्रकाश जी के अनुसार " मीराँ के जीवनमें अन्तः संघर्ष तो उसी समय से आरंभ हो गया होगा, जब " गिरधर गोपाल " को समर्पित उनका शरीर औपचारिक रूप से लौकिक पति के घर मेवाड़ में चला आया । यह आंतरिक संघर्ष मीराँ के पति भोजराज की मृत्यु के उपरान्त अकस्मात एक भीषण विस्फोट के रूप में प्रकट हुआ । "[13]

मीराँ ने भक्ति के कठिन मार्ग को अपनाया था । उसके जीवन का प्रमुख लक्ष्य प्रभुमिलन था । लोकनिंदा की ओर ध्यान न देते हुए राजरानी मीराँ धरती पर शयन कर, भूखे रहकर प्रभुप्राप्ति की कठिन साधना करती रही । निष्कर्षतः मीराँ का जीवन संघर्षरत रहा । मीराँ ने संघर्षों का डटकर सामना किया । कृष्ण को सर्वस्व

समर्पण करते हुए उसने पूरा जीवन साधना में गुजारा ।

संकीर्तन एवं सत्संग :

मीराँ सन्तों के साथ बैठकर भजन-कीर्तन करती । उसका विश्वास था कि सत्संग के कारण ही ज्ञान और भक्ति के साथ गिरधर नागर प्राप्त होंगे । इस सत्संग से ससुरालवाले अप्रसन्न थे । मीराँ ने अन्तिम क्षण तक सत्संग का साथ नहीं छोड़ा । विवाह के अनन्तर कुछ ही वर्षों में वह विधवा हो गई । परिणामतः भक्ति-भावना में मग्न रहना उसके जीवन का लक्ष्य बन गया । कुल की मर्यादा एवं सामाजिक प्रतिबन्धों की उसने उपेक्षा की और हरिभक्तों एवं साधु मंड़लियों के सत्संग एवं भजनादि में वह भाग लेने लगी । सत्संग के कारण वह अपने आपको धन्य मानने लगी । अर्थात् पारिवारिक यातनाएँ और जीवन में आये संघर्ष के कारण मीराँ ने अपना जीवन संकीर्तन एवं सत्संग में लगा दिया ।

गुरु -

मीराँ के गुरु के संबंध में अनेक विद्वानों नें अपना मत स्पष्ट किया है । कुछ विद्वानों नें मीराँ का गुरु रैदास को माना है तो कुछ विद्वानों नें रामानन्द को, कुछने जीवगोस्वामी जी आदि को; परन्तु मीराँ के " सत्गुरु " राम थे । वे हरि के अवतार थे । मीराँ ने किसी लौकिक सत्पुरुष को गुरु नहीं माना । " सत्गुरु राम " ही उसका आराध्य है । गिरिधर को ही उसने अनेक नामों से भज लिया है । अर्थात् मीराँ ने किसी से दीक्षा नहीं ली थी । वह स्वयं गुरु और स्वयं ही शिष्या थी । इस विषय में एक पद --

" हेरी म्हा दरद दिवाणाँ म्हाराँ दरद न जाण्याँ कोय ।। टेक ।।
घायल री गत घायल जाणयाँ, हिवडो अगण सँजोय ।
जौहर की गत जौहरी जाणै, क्या जाण्याँ जिण खोय ।
दरद की मारया दर दर डोल्याँ वैद मिल्या नहिं कोय ।
मीराँ री प्रभु पीर मिटाँगा जब वैद साँवरो होय ।।"[14]

इस पद में मीराँ स्पष्ट कहती है कि दरद के मारे वह घूमती रही, मगर कोई वैद्य नहीं मिला । दर्द मिटने के उपचार उसके साँवरिया करेंगे। इसका मतलब गुरु रूप में उसने कृष्ण को स्वीकार किया हैं । डॉ॰ भुवनेश्वरनाथ मिश्र " माधव ", श्रीमती शबनम, डॉ॰ सुमन शर्मा आदि ने मीराँ का गुरु " रैदास " ही माना हैं । डॉ॰ शिवकुमार शर्मा मीराँ पर सन्त - समुदाय और चैतन्य मतानुयायी दोनों का प्रभाव मानते हैं । डॉ॰ रामप्रकाश और डॉ॰ राजेन्द्रमोहन भटनागर दोनों का कहना है कि मीराँ न किसी मत में दीक्षित हुई थी और न कोई उनका गुरु था । डॉ॰ प्रभातजी की दृष्टि में मीराँ के गुरु अथवा उसे साधनापथ पर प्रेरित करनेवाले बहुत से व्यक्ति थे। उनमें रामानन्द, रैदास, विठ्ठल, हरिदास, माधवपुरी, चैतन्य महाप्रभु, दासभान § रघुनाथदास §, जीवगोस्वामी, रूपगोस्वामी, देवाजी, गजाधर आदि के नाम उन्होंने लिए हैं ।

अतः यह सिध्द होता है कि मीराँ का उपलब्ध जीवन वृत्तांत उलझी हुअी "गुत्थी " है । इस " गुत्थी " की एक गाँठ मीराँ के गुरु से भी सम्बध्द है । कुछ विद्वानों ने " रैदास " को मीराँ का गुरु माना तो वियोगी हरि आदि कुछ विद्वान जीवगोस्वामी को मीराँ का गुरु मानते हैं । अतः रैदास मीराँ के दीक्षा गुरु नहीं हो सकते । मीराँ समकालीन प्रमुख संतों और भक्तों के संपर्क एवं साहचर्य में आई थी; किन्तु उसने किसी संप्रदाय विशेष को ग्रहण नहीं किया था । किसी गुरु से दीक्षा भी नहीं ली थी । मीराँ का गिरिधरलाल से सीधा संबंध था । उसे किसी गुरु के माध्यम की आवश्यकता नहीं थी । उसने श्याम के चरणों में स्वयं को समर्पित किया । उसके गुरु और प्रियतम गिरिधर कृष्ण ही रहे ।

उपास्य देव -

मीराँ का उपास्य देव और भक्ति के आलंबन गिरधर गोपाल कृष्ण थे । उसने अपने उपास्य देव का स्मरण हरि और राम दोनों रूपों में किया है । मीराँ ने इस गिरिधर नागर को अनेक नामों से संबोधित किया है, जैसे कि मोहन, नन्दलाल,

जसुमती के लाल, बलवीर, साजन, सैया, पीव, धणी आदि । मीराँ का सावरा घटघट में बसा है । मीराँ सगुण रूप में उसे स्मरण करते हुए वह उसे जन्मजन्मांतर का साथी मानती है । वह उसका भरतार है । वह स्वयं गिरधरमय हो गयी है ।

मीराँ का चित्तौड़ त्याग :

मीराँ को मारने का प्रयत्न हुआ था यह देखकर मीराँ के चाचा राव वीरमदेव ने मीराँ को मेड़ता बुला लिया था । इसलिए मीराँ ने चित्तौड़ त्याग दिया । डॉ॰प्रभातजी ने मीराँ के चित्तौड़ त्याग के दो कारण बताए हैं ।

§1§ मीराँ को कष्ट देनेवाला राणा विक्रमजीत ।

§2§ बहादूरशाह का दुसरी बार आक्रमण ।

कहते हैं कि बहादूरशाह के आक्रमण के कारण 13000 स्त्रियों ने जौहर में अपना प्राण त्यागा । मीराँ वहाँ होती तो अपनी सास के साथ उसे भी जौहर करना पड़ता । मीराँ ने चित्तौड़ का त्याग अवश्य किया था ।

फिर मालदेव के मेड़ता छिन लेने पर पारिवारिक संकट-काल और अनिश्चित भविष्य के संदेह से मीराँ ने मेड़ता भी त्याग दिया ।

अजमेर गमन :

मीराँ मेड़ते में एक दो वर्ष रही फिर चाचा जी के साथ अजमेर चली गयी ।

पुष्कर यात्रा :

अजमेर में ही उसने तीर्थ-स्थान पुष्कर की यात्रा की थी ।

वृन्दावन निवास :

मीराँ पुष्कर की यात्रा करके वृन्दावन चली गयी थी । वहाँ उसकी भेंट कृष्ण भक्त जीव-गोस्वामी से हुई । तीर्थस्थानों का पर्यटन करती मीराँ वृंदावन पहुँची ।

गिरधरलाल की इस लीलाभूमि में वह बहुत दिन तक रहीं । मीराँ की यह तीर्थयात्रा नहीं, यह तो कृष्ण प्यारे की भूमि की यात्रा थी । मीराँ स्वयं कहती है कि वृन्दावन बहुत नीका लगा, क्योंकि वहाँ हर घर में ठाकुर की पूजा होती है और कृष्ण के दर्शन का लाभ भी मिलता है । जमना का निर्मल पानी, दूध, दही का भोजन, मुरली की मधुर ध्वनि भी इस वृंदावन में उपलब्ध है । यह भाव मीराँ के निम्नलिखित पद में स्पष्ट हुआ है -

"आली म्हाणे लागा वृन्दावण नीकाँ ।। टेक ।।
घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविन्दजी काँ ।
निरमल णीर बहयाँ जमणा माँ, भोजन दूध दही काँ ।
रतण सिंघासण आप विराज्याँ, मुगट धरयाँ तुलसी काँ ।
कुंजन-कुंजन फिर्या साँवरा, सबद सुण्या मुरली का ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, भजण विणा नर फीकाँ ।"[15]

स्पष्ट है कि वृंदावन में उसका भजन-कीर्तन गूंजता रहा । उसका अंतःकरण हमेशा प्रियतम कृष्ण के ध्यान में लगा रहता ।

मीराँ ने अपने अंतिम दिन द्वारिका में व्यतीत किये । जयमल मीराँ को मेड़ता लाना चाहता था । मगर मीराँ द्वारका न छोड़ सकी । हारकर जयमल ने अपने कुछ पुरोहितों को बुलाने भेज दिया । वे सब मीराँ के द्वार धरना देकर बैठ गये; परंतु मीराँने द्वारका न छोड़ी ।

गोलोकवास -

मीराँकालीन स्त्रोतों के आधार पर यह सिध्द होता है कि उसकी मृत्यु द्वारिका में हुअी । वह रणछोड़जी की मूर्ति में समा गई । मीराँ का निधन तिथि, समय, परिस्थिति, वातावरण, ऐतिहासिकता के आधारपर संवत 1603 मानना होगा ।

मीराँ का कृतित्व :

हिन्दी साहित्य में मीराँ का स्थान एक भावुक भक्त एवं लोक - गायिका के के रूप में है । मीराँ को काव्य-कला, संगीतादि में रुचि थी । उसे प्रारम्भिक शिक्षा में काव्य - संगीत का प्रशिक्षण भी मिला था । मीराँ का ससुराल संगीत और साहित्य से प्रभावित था । मीराँ को काव्य कला, संगीतादि के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्राप्त था । उसके पति ने उसे किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचायी । मीराँ ने पति के मरणोपरान्त भी अपने कठोर वैधव्य को सहन करने के लिए इन साधनों की सहायता ली थी । मीराँ ने कृष्ण को सर्वस्व समर्पण किया था । अपने इष्टदेव को रिझाने के लिए प्रेमविभोर होकर पदों को गाया था । मीराँ के जीवन काल में ही उसके गीत दूर - दूर के प्रदेशों में लोकप्रिय हो गए थे ।

मीराँ के जिन पदों का उल्लेख अनेक विद्वानों द्वारा हो चुका है उनमें से कुछ रचनाएँ पूर्ण है, तो कुछ अपूर्ण हैं । ये पद या रचनाएँ मीराँ के जीवन की अमूल्य निधि है । डॉ॰ भगवानदास तिवारी जी मीराँ का एक भी ग्रन्थ हस्तलिखित और प्रामाणिक नहीं मानते हैं । उन्होंने ऐसा भी कहा है कि नामधारी साधु - संतोंने मीराँ के नाम से ये रचनाएँ चला दी हैं । यह ग्रंथ मीराँ की वाणी न होकर अन्य भक्तों की वाणी है ऐसा भी कहा है । किन्तु मीराँ ने अवश्य कुछ रचनाएँ रची होगी । कुछ विद्वानों ने मीराँ के ग्रंथो की संख्या ग्यारह, कुछ ने आठ तो कुछ विद्वानों ने चार मानी है ।

मीराँ की रचनाओं की प्रामाणिकता में संदिग्धता है । फिर भी मीराँ कृत कही जानेवाली निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख मिलता है । मीराँ की इन रचनाओं को शैलीगत आधार पर तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है ।

(अ) टीका ग्रंथ - (1) गीत गोविन्द की टीका

§ब§ प्रबन्धात्मक ग्रंथ - §2§ नरसीजी का मायरा

§3§ सतभामानुं रूसणुं

§4§ नरसिं महतानों हुंडि

§5§ रुक्मणी मंगल

§6§ चरित § चरित्र §

§क§ स्फूट पद - §7§ राग सोरठ का पद

§8§ राग मलार

§9§ मीराँबाई की गरबी

§10§ राग गोविन्द के पद

§11§ फुटकर पद

§12§ मीराँबाई की पदावली

इन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है ।

§अ§ टीका ग्रन्थ :

§1§ गीत गोविंद की टीका -

इस रचना का अभी तक कहीं पता नहीं चला है । वास्तव में " गीत गोविन्द की टीका " की पूर्ण या अपूर्ण हस्तलिखित या मुद्रित प्रति कहीं नहीं मिलती है। इस संबंध में डॉ॰ कृष्णदेव झारी जी लिखते हैं कि "यह रचना भ्रांतिवश मीराँ-कृत प्रसिध्द हो गई । वास्तव में मीराँकृत किसी गीतगोविन्द की टीका की कोई प्रति कहीं उपलब्ध नहीं हुई ।"[16] यह ग्रन्थ महाराज मानसिंह के समय जोधपुर के राजकीय ग्रन्थागार "पुस्तक प्रकाश" में उपलब्ध था । मीराँ का काव्य स्वयंस्फूर्त एवं भक्ति से प्रेरित सहज वाणी है । इस रचना के संबंध में डॉ॰ प्रभातजी लिखते हैं " वे अपने प्रिय आराध्य में इतनी तन्मय थीं कि बैठकर ग्रन्थ रचने का अवकाश उन्हें न था ।

टीका और टीका की व्याख्या न उनकी भक्ति संपृक्त भावना के अनुकूल थी और न उनके निस्पृह वैराग्यपूर्ण स्त्री स्वभाव के ।"[17]

कुछ विद्वान इस रचना को संस्कृत के जयदेव की रचना मानते हैं । यह कृति मूलतः संस्कृत की है । मीराँ का नाम जयदेव के "गीत-गोविन्द की टीका" से जोड़ा जाता है । किन्तु मीराँ जयदेव से प्रभावित नहीं थी । किसी ग्रन्थ को लिखना उसकी प्रकृति के अनुकूल भी नहीं था । इस संबंध में प्रो॰ देशराजसिंह भाटीजी ने कहा है कि "गीतगोविन्द संस्कृत पीयूषवर्षी महाकवि जयदेव की रचना है, जो अपनी मधुरता एवं सरलता के लिए विख्यात है । यह पुस्तक इसी कृति की टीका है । वस्तुतः यह टीका महाराणा कुम्भा ने रची थी , किन्तु भूल से इसे मीराँ की मान लिया गया ।"[18]

अभितक इस ग्रन्थ का पता नहीं चला । मीराँ की ऐसी स्वतंत्र कृति भी नहीं है । मीराँ ने इतनी शिक्षा नहीं पायी थी कि वह टीकात्मक ग्रन्थ लिख सके ।

{ब} प्रबंधात्मक ग्रन्थ :

{2} नरसीजीका मायरा {माहेरो}

इसमें नरसी भक्त की "भात-देने" की कहानी पद्य भाषा में वर्णित है । प्रो॰देशराजसिंह भाटीजी ने इस माहेरो का अर्थ "भात देना" ऐसा कहा है । माहेरो राजस्थान और गुजरात की एक लोकप्रिय प्रथा है । लडकी या बहन के घर जब उसकी संतान का विवाह होता है तब पिता व भाई पहरावनी ले जाते हैं उसी का नाम "माहेरो" है । कहते हैं नरसी का माहेरो उनकी पुत्री "नानाबाई" के यहाँ हुआ था।

हम मीराँ का संबंध नरसी जी का मायरा से जोड़ नहीं सकते । क्योंकि यह रचना 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध्द की लिखी है । इस कृति की प्रामाणिकता में भी संदेह

है । इसके दो कारण हैं । एक तो इस रचना की भाषाशैली मीराँ की भाषाशैली से भिन्न है । दूसरा कारण यह कि मीराँ की राजस्थानी भाषा का पुट एवं पदावली जैसी भावुकता का इसमें अभाव है । हमेशा कृष्ण के प्रेम में मग्न रहनेवाली मीराँ ने प्रबंधात्मक काव्य न रचा होगा । डॉ॰ रामप्रकाश जी लिखते हैं कि इस रचना की अन्तिम पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि यह रचना मीराँ की नहीं है । अंतिम पंक्तियाँ इसप्रकार है -

" ये हि हुंडि मीराँ गाय ।
नाचत गावत परम पद पाय ।"

ऐसा स्वयं ही अपने लिए नाचते गाते हुए परम पद पाने का वर्णन मीराँ ने कभी नहीं किया होगा । डॉ॰ गणपतिचन्द्र गुप्तजी इस कृति के संबंध में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मीराँ ने पहली बार शायद व्रजमिश्रित भाषा में प्रबंध काव्य लिखने का प्रयास किया होगा।

किन्तु इस कृति में मीराँ की भावप्रवणता एवं राजस्थानी भाषा का अभाव होने के कारणयह कृति मीराँ की नहीं हो सकती । यह रचना किसी परवर्ती कवि की होगी ।

§3§ सतभामानुं रूशणुं -

यह अस्सी चरणों की एक संक्षिप्त रचना है । यह कृति सब से पहले हस्तलिखित पोथी के आधार पर "बृहत काव्य दोहन" में प्रकाशित हुई थी । यह गुजराती गरबा शैली की कृति है । डॉ॰ कृष्णदेव झारी इस रचना को मीराँ की रचना मानते हैं । दूसरी ओर डॉ॰ गणपतिचन्द्र गुप्तजी भी यह कृति गुजराती होने के कारण मीराँ द्वारा रचित मानते हैं ।

निष्कर्षतः यह सिध्द होता है कि यह रचना मीराँकृत है ।

§4§ नरसिं महतानों हुंडि -

इस कृति में कृष्ण, ने द्वारका में नरसिंह मेहता की दी हुई हुंडि को स्वीकारने की

घटना का उल्लेख है । 58 चरणों की इस संक्षिप्त रचना में नरसी भक्त की प्रसिध्द लोककथा वर्णित है । अधिकांश विद्वान इस कृति के प्रति अपना मत स्पष्ट न कर सके हैं । डॉ॰ गणपतिचन्द्र गुप्त जी ने मात्र इस रचना को मीराँ द्वारा रचित कह दिया है। इसकी भाषा गुजराती और व्रजभाषा मिश्रित हैं । अतः यह रचना मीराँ छाप की है ।

§5§ चरित § चरित्र § -

इस रचना में रामानंद जी के दर्शनों के लिए पीपाजी की कठोर साधना और उनका महत्व स्पष्ट हुआ है । अर्थात् इस रचना में भक्त पीपाजी का चरित्र वर्णित है। मीराँ ने किसी भी संप्रदाय से निष्ठा व्यक्त नहीं की है । भक्ति-भावना का प्राधान्य भी इस कृति में नहीं है । अतः यह मीराँ की रचना नहीं हो सकती ।

§6§ रुक्मणी मंगल -

कहा जाता है कि मीराँ ने "रुक्मणी मंगल" नामक किसी प्रबंधात्मक काव्य की रचना की थीं । यह कोई अलग ग्रंथ नहीं है । इसके दो चार गीत ही उपलब्ध हैं, जिन्हें हम स्फूट पदों के अंतर्गत रख सकते हैं । डॉ॰ लाजवन्ती भटनागर भी इस कृति को मीराँ की रचनाओं की श्रेणी में रखना गलत समझती हैं । निष्कर्षतः इस रचना की व्यवस्थित प्रति उपलब्ध न होने के कारण यह स्पष्ट होता है कि यह रचना मीराँ की नहीं है ।

§क§ स्फूट पद :

§7§ राग सोरठ के पद -

मीराँ के पद गेय हैं इसलिए उन्हें विभिन्न रागों के अंतर्गत रख सकते हैं। "राग सोरठ के पद" मीराँ रचित कृति है । राग सोरठ में गाये जानेवाले मीराँ के पद " राग सोरठ के पद " के नाम से प्रचलित हो गए । भक्त कवियों का प्रिय राग

सोरठ है । इस कृति में केवल मीराँ के ही नहीं अपितु कबीर, नामदेव नामक भक्त कवियों के ऐसे पद संग्रहीत हैं । अतः यह मीराँ की स्वतंत्र कृति नहीं है ।

§8§ मीराँबाई का राग मलार -

" राग मलार " एक राग विशेष का नाम है । " मलार " को एक प्रकार का लोकगीत माना है, जो ग्राम्य जीवन में प्रचलित है । यह " मलार राग " गाये जाने योग्य होता है । मीराँ के पदों में अधिकांश पद संग्रह " मलार " राग के पदों में संकलित मिलते हैं; जिसमें गोविंद का गुणगान किया है । श्री गौरी शंकर हीराचंद ओझाजी इस कृति को प्रामाणिक मानते हैं । अतः यह नामकरण मीराँ के कुछ विशिष्ट पदों को ही दिया होगा । यह कोई स्वतंत्र रचना नहीं है ।

§9§ मीराँबाई की गरबी :

" गरबी " यह एक प्रकार का भावप्रधान छोटा गीत है । गुजरात में यह " गरबा गीत " बहुत प्रचलित है । स्त्रियाँ यह गीत गरबा चौथ, करवा चौथ जैसे त्यौहारों पर गाती हैं । यह गीत रासमंडली के गीतों के समान गाये जाते हैं । इस कोटि में मीराँ के अनेक पद आते हैं । डॉ॰ रामप्रकाश जी " गरबा शैली " का आरंभ मीराँ के 150 वर्ष पश्चात् मानते हैं । इन गीतों की भाषा शैली अधिकांशतः आधुनिक होने के कारण इसे मीराँ की रचना माना नहीं जाता । यह रचना स्वतंत्र रचना नहीं है। इसकी प्रामाणिकता में भी संदेह है ।

§10§ राग गोविन्द -

मीराँ के गोविन्द संबंधी गीत राजस्थान में जोधपुर के " पुस्तक प्रकाश " में मिलते हैं । मीराँ द्वारा गोविन्द का राग गाया गया था । यह निश्चित है कि इस कृति में रागरागनियों में बँधे मीराँ के गोविंद - गुणगान एवं गोविंद महिमा के पद हैं ।

मुंशी देवीप्रसाद, आचार्य शुक्ल यह ग्रंथ मीराँलिखित मानते हैं । निष्कर्षतः यह स्पष्ट होता है कीयह रचना कोई स्वतंत्र रचना नहीं है, वरन् " राग गोविंद " में गोविंद नाम से प्रभु का गुणगान है । यह ग्रंथ मीराँ रचित है ।

11) फुटकर पद :

कृष्णभक्ति के आवेश में मीराँ ने अपनी भावनाओं को स्वरबध्द करके पदों के रूप में व्यक्त किया है । यह मीराँ की विश्वसनीय और प्रामाणिक रचना मानी गयी है । मीराँ के पदों की संख्या कई विद्वानों ने 200 तक मानी है । मीराँ के पद पंजाब, राजस्थान, व्रजप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र आदि राज्यों में प्रचलित हैं । मीराँ के पदों का यह संग्रह है । साथ - साथ अन्य भक्त कवियों के पदों का भी संग्रह है । इन भक्त कवियों के पदों के गायन और लेखन की परंपरा में परिवर्तन हुआ है । कबीर की तरह मीराँ के पदों की भी बहुत दुर्दशा हो गयी है । मीराँ के पदोंको जिसने भी गाया, उसने अपने साँचे में ढलकर, अपने विचारानुसार मीराँ के नाम पर स्वरचित पद प्रसिध्द कर दियें हैं ।

इस प्रकार यह कृति मात्र मीराँ की नहीं , अपितु अन्य भक्त कवियों के पदों का भी यह संग्रह है । मीराँ की स्वतंत्र रचना में इसे हम नहीं मान सकते ।

12) मीराँबाई की पदावली :

यह कृति मीराँ की प्रामाणिक कृति मानी गयी है । मीराँ की पदावली के पदों की संख्या के बारेमें विद्वानों ने अनेक मत व्यक्त किए हैं । पदों की संख्या निश्चित रूप से बताना कठिन है । मीराँ के पद गुजराती, राजस्थानी तथा राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा में उपलब्ध होते हैं । अतः यह मीराँ रचित कृति है । मीराँ के प्रामाणिक पदों की संख्या अभीतक निर्धारित नहीं की जा सकी है ।

निष्कर्ष -

मीराँ हिन्दी साहित्य की ही नहीं भारतीय साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री है । भक्ति के क्षेत्र में मीराँ की बराबरी संसार की कोई भी स्त्री नहीं कर सकती । इस विश्व की वह ऐसी स्त्री रत्न है; जिसमें सत्य और सौंदर्य से युक्त भक्ति की साधना है । मीराँ के कारण हमारा साहित्य धन्य हो गया है ।

र

मीराँ जैसी महान विभूति का जन्म संवत 1561 के लगभग मेड़ता नगर के " कुडकी " नामक ग्राम में हुआ था । मीराँ ने राठौड़ वंश में जन्म लिया था । मीराँ के पिता का नाम " रत्नसिंह " और माता का नाम " कुसुम कुंवर " था । मीराँ की माँ गिरिधर गोपाल की उपासिका थी । मीराँ का " जयमल " नामक एक चचेरा भाई था । मीराँ और जयमल दोनों वैष्णव भक्त थे । मीराँ का पितृपरिवार धार्मिक, राजकुलीन एवं सुसंस्कारित था । मीराँ के जन्म के कुछ समय पश्चात ही मीराँ की माता का स्वर्गवास हुआ । उसके बाद मीराँ का शैशव दादाजी की स्नेहमयी गोद में बीता । मीराँ राजवैभव और दुलार-प्यार में पली थी; किन्तु उसे आगे चलकर लौकिक दुर्भाग्य का भी सामना करना पड़ा । दादाजी ने ही उसकी परवरिश की । दादाजी के सुयोग्य संरक्षण में मीराँ ने साहित्य, संगीत और नृत्यादि कलायें आत्मसात कीं । दादाजी परम श्रेष्ठ वैष्णव भक्त थे। उनके प्रभाव के कारण मीराँ का मन धर्म और भक्ति के प्रति आकर्षित हुआ था । उसने कृष्ण को अपना आराध्य, जन्म-जन्म का साथी माना और उसे अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया ।

मीराँ का विवाह सन् 1516 में राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर भोजराजजी के साथ हुआ था । मीराँ वैवाहिक सुख से वंचित रही, क्योंकि कुछ दिनों बाद उसके पति इस संसार से चल बसे । पति की मृत्यु के बाद वह सती न हुई । मीराँ का ससुराल भी राजपरिवार एवं धार्मिक प्रवृत्ति से युक्त था । मीराँ के देवर विक्रमजीत और ननद उदा दोनों ने मीराँ पर खूब अत्याचार किए । इन दोनों को मीराँ की कृष्ण-भक्ति, राजपरिवार की मर्यादाओं का उल्लंघन एवं साधुसंगति में रहकर कीर्तन-भजन करना

पसंद नहीं था । फिर भी ससुराल में मीराँ का भक्तिभाव और सन्त समागम विधिवत बना रहा । यह देखकर मीराँ को जान से मारने की कोशिश भी की गयी थी । कृष्णभक्ति की अनन्यता के कारण मीराँ पर किसी का भी असर न हुआ । मीराँ का जीवन संघर्षमय रहा । मीराँ हरि की आराधना, साधना, संकीर्तन एवं सत्संग में अपना जीवन व्यतीत करती रही । मीराँ ने वैराग्य धारण कर अपना चित्त कृष्ण के चरणों में लगा दिया । मीराँ का उपास्यदेव, गुरु एवं प्रियतम कृष्ण ही था । उसका कृष्ण अविनाशी, सर्वशक्तिसंपन्न, सर्वगुण से युक्त था । सन्त लोगों के प्रति उसके मन में सद्भावना थी । अपने प्रिय कृष्ण के पथ का अनुसरण करती हुई मीराँ वृन्दावन से द्वारिका पहुँची । इसके पहले उसने अजमेर, पुष्कर आदि यात्राएँ भी की थी । द्वारिका पहुँचने पर मायके लौटने का आग्रह भी हुआ; परन्तु वह लौट न पायी । संवत 1603 में वह द्वारिका में रणछोडजी के समक्ष स्वर्ग सिधारी । जीवन के अंततक कृष्ण की आराधना करनेवाली, उसे सर्वस्व अर्पण करनेवाली, कृष्ण की अनन्य साधिका मीराँ कृष्णमय हो गई ।

विद्वानों ने मीराँ के नाम से रचे गए बारह ग्रंथों का उल्लेख किया है । ये सभी बारह ग्रंथ मीराँ की रचनाएँ नहीं हो सकती, क्योंकि यह निर्विवाद रूप से प्रामाणिक रचनाएँ नहीं हैं । उनमें से कुछ कृतियाँ पूर्ण हैं, तो कुछ अपूर्ण हैं । कुछ कृतियों के बारे में संदेह स्पष्ट हुआ है। कुछ ग्रंथ मीराँ की स्वतंत्र रचनाएँ नहीं हैं । मीराँ के फुटकर पद ही सुनिश्चित रूप से उसकी प्रामाणिक रचनाएँ हैं । इनमें भी अन्य भक्तों द्वारा मीराँ के नाम से लिखे पद भी अधिक संख्या में मिल गए हैं । " मीराँबाई की पदावली " यह मीराँ की कृतियों में सर्वाधिक विश्वसनीय कृति मानी गयी है । इसके पदों की संख्या दो सौ तक है । ये पद गुजराती, राजस्थानी, राजस्थानी ब्रज मिश्रित भाषा में उपलब्ध होते हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

§1§ डॉ॰ भानावत नरेन्द्र,

" हिन्दी साहित्य की प्रमुख कृतियाँ और कृतिकार "

पृष्ठ क्र॰ 80

अनुपम प्रकाशन, जयपुर - 3,

प्रथम संस्करण 1969॰

§2§ डॉ॰ झारी कृष्णदेव,

" मीराँबाई "

पृष्ठ क्र॰ 69

शारदा प्रकाशन महारौली, नई दिल्ली - 30

प्रथम संस्करण 1976

§3§ डॉ॰ मिश्र भुवनेश्वरनाथ " माधव "

" मीराँ की प्रेमसाधना "

पृष्ठ क्र॰ 42

राजकमल प्रकाशन § प्रा § लि॰, दिल्ली - 6

परिवर्तित एवं परिवर्धित चतुर्थ संस्करण

§4§ डॉ॰ भटनागर लाजवन्ती,

" धर्म सम्प्रदाय और मीराँ का भक्ति-भाव "

पृष्ठ क्र॰ 213

वाणी प्रकाशन 61, एफ कमलानगर दिल्ली - 110007

प्रथम संस्करण - 1980

§5§ प्रो॰ भाटी देशराजसिंह

" मीरॉं की काव्य कला "

पृष्ठ क्र॰ 13

जगदीशचन्द्र गुप्त अशोक प्रकाशन नई सड़क दिल्ली

प्रथम संस्करण - 1962

§6§ डॉ॰ तिवारी भगवानदास

" मीरॉं की भक्ति और उनकी काव्यसाधना का अनुशीलन "

पृष्ठ क्र॰ 127

साहित्यभवन § प्र § लिमिटेड के॰पी॰ कक्कड रोड इलाहाबाद

211003

प्रथम संस्करण - 1974

§7§ डॉ॰ भानावत नरेन्द्र,

"हिन्दी साहित्य की प्रमुख कृतियॉं और कृतिकार "

पृष्ठ क्र॰ 80

अनुपम प्रकाशन, जयपुर - 3

प्रथम संस्करण - 1969

§8§ प्रो॰ भाटी देशराजसिंह

" मीरॉं की काव्य कला "

पृष्ठ क्र॰ 15

जगदीशचन्द्र गुप्त, अशोक प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली

प्रथम संस्करण - 1962

§9§ डॉ॰ प्रभात

" मीरांबाई § शोधप्रबंध §

पृष्ठ क्र॰ 132

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड् हीराबाग बंबई - 4

प्रथम संस्करण - 1965 § जनवरी §

§10§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम

" मीरांबाई की पदावली "

पृष्ठ क्र॰ 111, पद 38

सुधाकर पाण्डेय, एम॰पी॰ प्रधानमंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

पन्द्रहवाँ संस्करण : 1973, 1895 शकाब्द

§11§ डॉ॰वर्मा हरिश्चन्द्र, डॉ॰गुप्त रामनिवास

" हिन्दी साहित्य का इतिहास "

पृष्ठ क्रमांक - 235

मंथन पब्लिकेशन्स 34, L मॉडल टाउन रोहतक - 1

प्रथम संस्करण - 1982

§12§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम

" मीरांबाई की पदावली "

पृष्ठ क्रमांक 111, पद 36

सुधाकर पाण्ड्रेय, एम॰पी॰प्रधानमंत्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

पन्द्रहवाँ संस्करण -1973 1895 शकाब्द

§13§ डॉ॰ रामप्रकाश

" मीरांबाई की काव्य-साधना "

पृष्ठ क्रमांक 19

हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली - 6

प्रथम संस्करण - 1972

§14§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम

" मीराँबाई की पदावली "

पृष्ठ क्र• 120, पद क्रमांक 70,

सुधाकर पाण्डेय, एम•पी•प्रधानमंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रथम संस्करण -1973 1895 शकाब्द

§15§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम

" मीराँबाई की पदावली "

पृष्ठ क्रमांक 146, पद क्र• 160

सुधाकर पाण्डेय, एम•पी• प्रधानमंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

पन्द्रहवाँ संस्करण -1973 1895 शकाब्द

§16§ डॉ• झारी कृष्णदेव,

" मीराँबाई " § मीराँबाई के जीवन और कृतित्व का अध्ययन §

पृष्ठ क्रमांक 74

शारदा प्रकाशन महरौली, नई दिल्ली - 30

प्रथम संस्करण - 1976

§17§ डॉ• प्रभात

" मीराँबाई " § शोधप्रबंध §

पृष्ठ क्र• 258

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड हीराबाग - बंबई - 4

प्रथम संस्करण - 1965 § जनवरी §

§18§ प्रो• भाटी देशराजसिंह

" मीराँ की काव्य-कला"

पृष्ठ क्र• 22

जगदीशचन्द्र गुप्त, अशोक प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली

प्रथम संस्करण - 1962